मी टाइम

रंजना जायसवाल

स्वतंत्र लेखन, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती रहती हैं। वर्तमान में मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश में निवासरत हैं।

"अभीर यह क्या तरीका है, तुम्हारी मम्मी जब देखो तब किसी न किसी बहाने से कमरे में चली आती है।"

"क्या हुआ टिया तुम इतनी नाराज़ क्यों हो?"

आज टिया आपे से बाहर थी,

"मेरी भी अपनी जिन्दगी है, सब कुछ तो कर रही हूँ। फिर भी..."

"साफ़-साफ़ बताओगी, आखिर हुआ क्या है ?"

अभीर का धैर्य अब जवाब देने लगे था।

"एक दिन की बात होती तो ठीक थी; पर अब तो यह रोज़-रोज़ की बात हो गई है। कभी ब्लड प्रेशर चेक कराने, कभी कफ सिरप के ढक्कन खोलने तो कभी कुछ। आज तो हद ही हो गई।"

"हुआ क्या है साफ़-साफ़ बताओगी या फिर बस पहेलियाँ ही बुझाती रहोगी।"

अभीर का धैर्य अब गुस्से में बदलने लगा था।

"घर का काम निपटा कर बस लेटी ही थी कि तुम्हारी मम्मी..."

"तुम्हारी मम्मी-तुम्हारी मम्मी क्या लगा रखा है वो तुम्हारी भी तो कुछ लगती हैं?"

अभीर ने चिढ़ कर कहा- "वो तुम्हारी ही मम्मी है, मेरी मम्मी होती तो मेरे मी टाइम एक्सपॉयल करने नहीं आ जाती। क्या वो टीवी के रिमोट की बैट्री भी बदल नहीं सकती। एक दिन की बात होती तो अलग बात थी पर वो रोज़-रोज़ मेरे मी टाइम को बर्बाद करने के लिए तैयार खड़ी रहती हैं। आखिर मेरी भी तो जिंदगी है?"

टिया की आवाज़ दूसरे कमरे तक आ रही थी। उम्र के इस पड़ाव पर मंजरी जी को वैसे तो थोड़ा ऊँचा ही सुनाई देता था पर आज उन्हें सब कुछ साफ़-साफ़ सुनाई भी दे रहा था और दिखाई भी!

मी टाइम! कितना अलग सा शब्द था उनके लिए, कानों के लिए भी शायद अपरिचित ही था। शायद इसीलिए जब भी उनकी बहू यह शब्द बोलती उनके कान आज्ञाकारी बच्चों की तरह खड़े हो जाते। मंजरी जी भी शिक्षित थी मनोविज्ञान से पोस्ट ग्रेजुएशन किया था उन्होंने...पर आजकल की लड़कियों की तरह शब्दों के शार्ट फॉम उन्हें नही आते थे।

आज़कल की लड़कियों की तरह उनकी उंगलियाँ की बोर्ड और माउस पर नहीं बेलन और कलछुल पर चलती थी, शायद इसीलिए उनकी पीढ़ी के लिए उनकी शिक्षा का कोई महत्व नहीं था कितना फर्क था इस पीढ़ी और उनकी पीढ़ी में...

"पढ़ाई का मतलब नौकरी करना ही नहीं है, वैसे भी हमारा लड़का इतना पढ़ा-लिखा है, लड़की तो पढ़ी-लिखी होनी ही चाहिए। हमारी दोनों बहुएँ भी पढ़ी-लिखी हैं, कम से कम अपने बच्चों को तो पढ़ा सकेंगी।"

यही तो कहा था उनके ससुर ने और मंजरी जी ने भी उनकी बात को सर माथे लगा लिया था पर शिक्षित मन को समझा पाना इतना आसान भी नहीं था। एक बार दबे स्वर में उन्होंने अभीर के बाबू जी से कहा भी था।

"इतनी पढ़ाई की है,उसे यूँ जाया तो नहीं होने दे सकती। किसी स्कूल में..."

"जरूरत क्या है नौकरी करने की जब पति ठीक-ठाक कमा रहा है तो... अब क्या इतना बुरा वक्त आ गया है कि मैं बीबी के टुकड़ों पर पलूँ। जितना कमा रहा हूँ उसमे रहना सीखों। दुनिया

क्या सोचेगी लगता है घर के हालात बेहतर नहीं है इसलिए घर की औरतों को काम करने के लिए बाहर निकलना पड़ रहा है।"

अभीर के बाबू जी ने कुछ कहने का मौका ही कहाँ दिया था। शब्द गले में अटक कर रह गए । उनकी दुनिया घर की चहारदीवारी और अभीर तक ही सीमित रह गई।

"अपने ही बच्चे का भविष्य न बना सकी तो बाहर के बच्चों का भविष्य बनाकर क्या फायदा?"

यही तो कहा था अभीर के बाबू जी ने...एक अजीब सा डर उनके मन मे बैठ गया था। सच ही तो कहते हैं अभीर के बाबू जी उनका जो बनना बिगड़ना था वह बन बिगड़ गया अब तो अभीर पर ही ध्यान देना था।

अभीर की शैतानी दिन भर दिन बढ़ती जा रही थी, एक जगह बैठना तो मानो उसने सीखा ही नहीं था । कोई न कोई शिकायत लेकर आता ही रहता था । अब तो घर वाले भी परेशान हो गए थे।एक दिन बाबू जी ने उसके कान उमेठते हुए कहा था,

"सुधार जा वरना तुझे हॉस्टल भेज देंगे,सारी बदमाशी खत्म हो जाएगी। बुद्धि दुरुस्त हो जाएगी तेरी..."

हॉस्टल के नाम पर अभीर ही नही मंजरी भी डर गई थी, मानो हॉस्टल न हो काले-पानी की सजा हो।

पर वक्त बदला और वक्त के साथ सोच भी बदली। घर वालों की सोच अचानक से बदल गई थी। पढ़ी-लिखी बहू आज भी सबको चाहिए थी पर अब पढ़े-लिखे होने के साथ-साथ नौकरी करने वाली हो तो अच्छा रहेगा क्योंकि बेटे की कमाई से घर कैसे चल सकता है। महंगाई आसमान पर है, एक आदमी की कमाई से कैसे काम चलेगा । बच्चों का भविष्य भी बनाना है पहले जहाँ बहुएँ इसलिए पढ़ी-लिखी लाई जाती थी कि वह बच्चों को पढ़ा सके। आज वही पीढ़ी अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए ट्यूशन और कोचिंग भेज रही है । अच्छे भविष्य के लिए उन्हें हॉस्टल भी भेजा जाने लगा । बच्चे की जीवन की प्रथम पाठशाला माने जाने वाला परिवार अचानक से जागरूक अभिवावक माना जाने लगा।

आखिर इतनी पढ़ी-लिखी बहू लाने का मतलब क्या रहा?

पतियों के बगुले से झक सफ़ेद रुमालों के कोर में लटकती क्रोसिए के सफ़ेद धागे और उनके नाम का पहला अक्षर उनके दिलों और जिन्दगी में औरतों की वजूद और मौजूदगी को जता नहीं सके । बाएं हाथ की पहली उंगली में तेजी से लपेटे जाते सफ़ेद धागे देखकर लगता मानो वह अपनी जिम्मेदारियों और सपनों को एक साथ लपेट रहे हैं और वे धागे जब परत दर परत खुलते तो एक नई आकृति, एक नई कलाकृति का रूप ले लेती जो उनके बेजान कपड़ों की तरह बेजान पड़ी जिंदगियों को संवारने का निरर्थक प्रयास करती।

टिया की बात सुन मंजरी जी का मन दुखी हो गया। कितना अलग था उनका जीवन... पन्द्रह लोगों के परिवार में खुद के लिए सोचने का कभी वक्त ही नहीं मिला। चूल्हे-चौके से कभी फुर्सत ही नहीं मिली, पीठ सीधी करने के लिए कमरे में जाती भर थी कि कोई न कोई टपक पड़ता फिर चाय-पानी के दौर में खुद के लिए सोचने जैसी कभी चीज़ ही नहीं रही। शादी के पहले नाचने-गाने का कितना शौक था। उन दिनों शहर में कुकिंग क्लास का सेंटर खुला था दस तरह की पनीर की सब्जी और पाँच सूखी सब्जी सिखाने का तीन सौ रुपए लेते थे।

"जा बिटिया सीखे ले ससुराल में काम आएगा।"

अम्मा ने मंजरी पर दबाव बनाया था,

"अम्मा तुम जो बनाती हो वही सीख लूँ बहुत है, ये सब बड़े लोग के चोंचले हैं।"

"बिटिया गुण कभी बेकार नहीं जाता, हम को तो बस वही मटर पनीर, पालक पनीर और मखाना पनीर के सिवाए कुछ भी नहीं आता। सुना है शादी में जो सब्जियाँ खाने को मिलती है वो सब सिखाते हैं। ससुराल वालों के दिल तक पहुँचने का रास्ता पेट से होकर जाता है। सासु माँ का पारा जब गर्म हो तो झट से बढ़िया वाली सब्जी बनाकर खिला देना।"

मंजरी जी अम्मा को याद कर मुस्कुरा दी, कितनी भोली थी अम्मा कहाँ जानती थी उस घर में सास नहीं ससुर को खुश रखना जरूरी था। ससुर जी की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता था। सुबह से शाम तक का मेन्यू ससुर जी ही तय करते थे।

"रोज़-रोज़ पनीर...घर में भैंस लगती है क्या? वैसे भी रोज़-रोज़ मसालेदार सब्जी सेहत के लिए ठीक नहीं है।"

हफ़्ते में कभी-कभार पनीर की सब्जी बनती, सबको पसन्द भी आती पर घर की औरतों की थालियों तक शायद ही पहुँच पाती। उनकी दुनिया रस्से और अचार तक सीमित थी। वे अचार और चटनी में ही अपने स्वाद को ढूंढ लेती। कितनी अलग थी उन दिनों औरतों की दुनिया...सिंधी कढ़ाई, भरवा कढ़ाई, काथा से कढ़े मेजपोश, थालपोश, पर्दे, साड़ियों और चादरों में रंगीन धागों की लच्छियों से काढ़े गए बेजान कपड़े उनके हाथों की कारीगरी से खिलखिलाने लगती पर उनका जीवन किसी भी रंगीन लच्छी से किसी भी कढ़ाई से ख़ुशगवार नहीं हो सका। उन्होंने

अपनी जीवन में रंग भरने के लिए फिर ज़ोर मारा और अब वह बाज़ार से दो रंग वाली लच्छियाँ लेने लगी पर उनका यह प्रयास भी विफल रहा।रोज़ कढ़ाई भी उनके जीवन में खुशियों के फूल नहीं खिला सके।

मन में ख्वाहिशों को न पूरा हो पाने का मलाल एक गांठ कढ़ाई की तरह रहा, वे जिन्दगी भर अपने ही सपनों को कंधों पर खींचती रही पर कोई जंजीरा कढ़ाई उनका सहयोग न कर सकी।

पतियों के बगुले से झक सफ़ेद रुमालों के कोर में लटकती क्रोसिए के सफ़ेद धागे और उनके नाम का पहला अक्षर उनके दिलों और जिन्दगी में औरतों की वजूद और मौजूदगी को जता नहीं सके। बाएं हाथ की पहली उंगली में तेजी से लपेटे जाते सफ़ेद धागे देखकर लगता मानो वह अपनी जिम्मेदारियों और सपनों को एक साथ लपेट रहे हैं और वे धागे जब परत दर परत खुलते तो एक नई आकृति, एक नई कलाकृति का रूप ले लेती जो उनके बेजान कपड़ों की तरह बेजान पड़ी जिंदगियों को संवारने का निरर्थक प्रयास करती। टिनोपाल से धुले झक्क पेटीकोट के नीचे से झाँकती क्रोशिए की लेस उनकी सुघड़ता को दर्शाती पर उनके जीवन को सहेज और संवार नहीं पाती।

> **घर में रहते-रहते वह बोर हो जाती है। अकेलेपन की वजह से उसे डिप्रेशन की प्रॉब्लम हो गई है। यह पीढ़ी शायद खुद भी नहीं जानती उन्हें क्या चाहिए। अकेलापन से जूझता मन डिप्रेशन का शिकार हो रहा और इन्हें खुद के लिए मी टाइम भी चाहिए।**

क्रोशिए की सलाई की नोंक उनके सपनों में छेद करती रही और उनकी इच्छाओं को लहूलुहान...वक्त के साथ उंगलियों में लपेटे गए रूई की तरह सफेद धागे के वजन के पीछे पतली होती उंगलियां उन हाथों के रंगीन सपनों और अरमानों को भी सफेद करते चले गए।हर चेन के साथ बढ़ती नक्काशी लोगों की आँखों में उन कुशल हाथों के लिए प्रशंसा से भर देती पर हर घना जाल उनके जीवन को पहले से अधिक उलझन से भर देता पर वह खुश थीं। क्योंकि अपनी खुशी को उन्होनें जाना ही कहाँ था। परिवार की खुशी और उनके चेहरों पर पसरा संतुष्टि का भाव उनके खुश रहने के लिए पर्याप्त था। सबसे बड़ी बात पीहर तक उनकी शिकायतों का पुलिंदा और अम्मा-बाबू जी शर्मिंदगी से झुके हुए चेहरों को देखने की ताकत उनमें अब बिल्कुल भी नहीं थी। हर बार जब भी वह पीहर आती, अम्मा पानी परोसने से पहले सबसे पहले एक ही सवाल पूछती।

"ससुराल में सब ठीक है ना?

शायद बेटी से ज्यादा उन्हें ससुराल की चिंता थी। क्योंकि ससुराल का सुखी और संतुष्ट होना बेटी के सुखी होने की निशानी थी। यह डर वक्त के साथ कम तो जरूर हुआ था पर खत्म नहीं हुआ था। पीढ़ियाँ बदली पर डर अभी भी कायम था शायद इसीलिए अभीर की शादी के वक्त टिया की माँ ने विदाई के समय उनका हाथ पकड़ते हुए कहा था,

"टिया नादान है, इसकी गलतियाँ बेटी समझकर माफ़ कर दीजिएगा, आपकी बेटी की तरह ही है।"

न जाने मंजरी जी को ऐसा क्यों लगा था मानो वह पूछना चाहती हो,

"बेटी है न ?"

कितना फर्क था दोनों पीढ़ियों में... मंजरी जी ने कितनी रातें तकिया भिगो कर आँखों में काटी थी। जानती थी विकल्प नहीं थे उनके पास...जिस युग मे डोली और अर्थी एक ही दहलीज़ से उठने की बात कही जाती थी वहाँ विकल्प के रास्ते स्वतः ही बन्द हो जाते थे।कभी-कभी लगता घर के दरवाजे भले ही बन्द हो पर मन के कपाट हमेशा खुले होने चाहिए पर चाहिए और होने में हमेशा फ़र्क रहा है।

अम्मा ने हमेशा यही समझाया था,

"आँसुओं को या तो पी जाना या फिर बहा देना पर उस खारे पानी के कारणों को कभी जाहिर नही करना।"

यह दर्द उनके अकेले का तो नहीं था। कितनी बार बड़ी भाभी जी तो कभी देवरानी तो कभी-कभी सासु जी के चेहरे पर पसरे भी देखा था।सूजी आँखों के नीचे स्याह घेरे रात के फ़लसफ़े को बयां कर देती और हम सब एक-दूसरे के दर्द को जानकर भी अनजान बने रहते। एक छत के नीचे सांस लेते थे,एक साथ सुख भी बाँट लेते थे पर दुःख?

आज टिया को अपने पति से उनकी शिकायत करता देख न जाने क्यों उन्हें अजीब लगा था...हाँ अपने पति...क्योंकि अभीर उनके बेटे के साथ-साथ अब टिया का पति भी था,वो लड़ रही थी खुद के समय के लिए जिसमें वह खुल कर सांस ले सके, सोच सके अपने बारे में, बुन सके अपने सपनों को, संवार सके खुद को और एक नींद ले सके अपने थके हुए शरीर के साथ...कितना फर्क था उनकी जिंदगियों में वह तीन लोगों के परिवार में ख़ुद के लिए समय ढूंढ रही थी और मंजरी पन्द्रह लोगों के परिवार में मैं, मेरा, मुझे जैसा शब्द कब का भूल चुकी थी।

वक्त के साथ परिवार बिखर गया था।एक थाली में खाना खाने वाले भाई-बहन चचेरे हो गए थे, जेठानी-देवरानी पट्टीदार बन चुके थे। मंजरी जी भी पति की मृत्यु के बाद इकलौती बेटे-बहू के साथ रहने मुम्बई आ गई थी। वक्त के साथ आदतें भी बदल जाए

ये जरूरी तो नहीं... सबसे अंत में टाट पट्टी बिछाकर एक साथ खाना खाने वाली बहुएँ आज अलग-अलग शहरों में डाइनिंग टेबल पर अकेले खा रही थी। आज उनकी थालियों में अचार चटनी के साथ पनीर भी बराबर परोसा जा रहा था पर अब उस पनीर की सब्जी में न तो स्वाद महसूस होता था न उन्हें खाने की इच्छा शायद जीभ ने भी स्वाद के साथ समझौता करना सीख लिया था।

मंजरी जी का मन न जाने कैसा-कैसा हो गया। बरसों की आदत यूँ ही तो नहीं जाती। तीन लोगों के परिवार में तीन लोग तीन समय पर खाना खाते थे। इस उम्र में खाना पचता नहीं था।टिया उनके हिस्से का खाना डाइनिंग टेबल पर रख देती थी। मंजरी जी दिन में कई बार टिया के कमरे में झांक आती, इस उम्मीद के साथ शायद कुछ पहर वह उनके साथ बिता ले।अकेले तो सुख भी नहीं पचता खाना भला कैसे पचता।बात किए बिना उन्हें नींद नहीं आती थी पर उन्हें क्या पता था शहरों के घर के कमरे ही नहीं बल्कि उन घरों में रहने वालों के दिल भी छोटे होते हैं।

टिया अपनी जगह सही थी, कम से कम उसे यह कहने की हिम्मत तो थी। वह जीवन भर अपने लिए अपना समय ढूंढतीरही पर वह समय कभी ना मिला। वह तो यह बात भूल भी चुकी थी खुद के लिए भी समय होता है। कम से कम इस पीढ़ी ने अपने लिए समय मांगना और उसके लिए लड़ना तो शुरू किया पर...

एक दिन टिया अभीर से अपनी सहेली के बारे में बात कर रही थी।घर में दो प्राणी है, उसके पति सुबह नौ बजे ही ऑफिस के लिए निकल जाते हैं और देर रात तक लौटते हैं। घर में रहते-रहते वह बोर हो जाती है। अकेलेपन की वजह से उसे डिप्रेशन की प्रॉब्लम हो गई है। यह पीढ़ी शायद खुद भी नहीं जानती उन्हें क्या चाहिए। अकेलापन से जूझता मन डिप्रेशन का शिकार हो रहा और इन्हें खुद के लिए मी टाइम भी चाहिए।

मंजरी जी निराश होकर कमरे में चली गई। रात करवटे बदलते बीत गई,नींद जाने कब लगी। अभीर उन्हें ढूंढता हुआ कमरे में आ गया, उसने कमरे का पर्दा खोला सूरज की तेज रोशनी उनके चेहरे पर पड़ रही थी। आँखों पर चश्मा चढ़ा हुआ था और सीने पर किताब रखी हुई थी। शायद किताब पढ़ते-पढ़ते उन्हें नींद लग गई थी। मंजिरी जी का चेहरा एकदम शांत था जैसे कोई बड़ा बोझ उनके दिल से उतर गया हो। अभीर ने आवाज दी,

"माँ उठो न सर सूरज सर पर चढ़ा आया है और आप अभी तक सो रही है।"

मंजरी जी वैसे ही पड़ी रही। मंजरी जी इतनी देर तक कभी नही सोती थी। कहीं उनकी तबीयत तो ख़राब नहीं, अभीर ने उनके माथे पर हाथ रखकर उन्हें जगाने का प्रयास किया। वह वैसी ही पड़ी रही। शरीर एकदम ठंडा था। अभीर के चेहरे पर पसीने की बूंदें चूह-चूहा गई। उसने घबरा कर टिया को आवाज दी।

"टिया-टिया !"

टिया किचेन में चाय चढ़ा रही थी, अभीर की आवाज सुन वह भी घबरा गई, वह घबराकर मंजरीजी के कमरे की तरफ़ दौड़ी। अभीर की आँखों से आँसू बह रहे थे और मंजरी जी का निर्जीव शरीर बिस्तर पर पड़ा हुआ था। मंजरीजी इस संसारसे जा चुकी थी शायद अपने मी टाइम की तलाश में जो उन्हें जीते जी कभी ना मिला।